|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 9: राजविद्याराजगुह्ययोग

2/3 (श्लोक 7-21), रविवार, 14 अप्रैल 2024

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/aupxbSPJ7kM

कर्म बन्धन से मुक्ति का उपाय

सनातन धर्म की परम्परा को सर्वोपरि रखते हुए सबसे पहले प्रार्थना तथा मन के अज्ञानान्धकार को दूर कर सर्वत्र ज्ञान के प्रकाश को बिखेरने के प्रतीक स्वरूप दीप प्रज्वलन करते हुए आज के सत्र का शुभारम्भ हुआ।
भगवान की असीम कृपा से हमारे जीवन का ऐसा सौभाग्य जागृत हुआ कि हम श्रीमद्भगवद्गीता के चिन्तन, मनन, सीखने और अपने जीवन में ढालने में लगे हुए हैं। हमारे इस जन्म का पुण्य कर्म या फिर पूर्व जन्म का पुण्य कर्म है कि हम लोग श्रीमद्भगवद्गीता पढ़ने और आत्मसात करने के लिये चुन लिये गये। संसार में श्रीमद्भगवद्गीता जैसा कल्याणकारी कोई दूसरा ग्रन्थ नहीं है। गत पाँच हजार तीन सौ वर्षों में कितने ही महापुरुषों ने गीता की महिमा गाई है। सनातन धर्म के सभी अनुयायी जो भारत में और सारे विश्वभर में फैले हुए हैं, उनमें वेदों और श्रीमद्भगवद्गीता को छोड़कर अन्य बातों में एकरूपता नहीं है किन्तु भगवद्गीता के विषय में सभी की मान्यता एक है, क्योंकि इसमें खण्डन की वृत्ति नहीं है।

श्रीभगवान के अनुसार हमारी पूजा, आराधना का चाहे कोई भी रूप हो; उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मुख्य बात यह है कि उससे हमारे जीवन में घटा क्या और बदला क्या? लक्षण सही होने चाहिये। केवल प्रदर्शन करने से कुछ नहीं होता।

भक्त के लिये भगवान कहते हैं-

अद्वैष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।

मन में करुणा नहीं, दया नहीं, मैत्री भाव नहीं सिर्फ द्वेष भाव भरा हो तो हम भक्त कैसे कहलायेंगे? श्रीमद्भगवद्गीता में स्थान-स्थान पर ऐसे गुणों की सूची (check-list) दी गयी है। उसमें हमें यह देखना चाहिये कि ये सारे गुण हममे हैं या नहीं? यदि हैं तो हम सच्चे भक्त कहलायेंगे। नौवें अध्याय का चिन्तन चल रहा है। हम समझने का प्रयास कर रहे हैं। यह बहुत ही गूढ़ अध्याय है।

9.7

सर्वभूतानि कौन्तेय, प्रकृतिं(यँ) यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि, कल्पादौ विसृजाम्यहम्॥9.7॥

हे कुन्तीनन्दन ! कल्पों का क्षय होने पर (महाप्रलय के समय) सम्पूर्ण प्राणी मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं (और) कल्पों के आदि में (महासर्ग के समय) मैं फिर उनकी रचना करता हूँ।

विवेचन: भगवान कहते हैं, हे अर्जुन! कल्पों के अन्त में सभी भूत मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं और कल्प के आदि में, मैं फिर उनकी रचना करता हूँ।

कल्प क्या होता है? चार लाख बत्तीस हजार वर्ष का कलयुग, आठ लाख चौंसठ हजार वर्ष का द्वापरयुग, बारह लाख छियानवे हजार वर्ष का त्रेतायुग, सत्रह लाख अट्ठाईस हजार वर्ष का सतयुग होता है। इस प्रकार चारों युग मिलाकर कुल तैंतालीस लाख बीस हजार वर्ष का एक चतुर्युग होता है। इकहत्तर चतुर्युगों का एक मनवन्तर होता है। ब्रह्माजी के एक दिन में चौदह मनु (मनवन्तर) होते हैं।

इसकी गणना करें तो लगभग एक हजार चतुर्युग के बराबर ब्रह्माजी का एक दिन होता है। इस प्रकार **एक कल्प अर्थात मनुष्य के तैंतालीस करोड़ बीस लाख वर्ष के बराबर ब्रह्मा जी का एक दिन होता है। यही एक कल्प कहलाता है।** जब ब्रह्मा जी सोते हैं तो उनका बनाया सारा ब्रह्माण्ड उन्हीं में विलीन हो जाता है।

इसे एक बच्चे के खेल से समझते हैं। बच्चा अलग-अलग रङ्गों के क्ले से खेलता है। हरे, नीले, पीले, लाल क्ले से वह खिलौने बनाता है, खेलता है और घर में बिखेर देता है। माँ यह सब जब देखती है, तो डाँटती है और बच्चे के बनाये सभी खिलौनों को मोड़कर, इकट्ठा कर रख देती है। बच्चा दूसरे दिन फिर से कुछ नया बनाकर खेलता है। इसी प्रकार ब्रह्माजी भी जब सवेरे जागते हैं तो सृष्टि का फिर से निर्माण करते हैं।

एक ब्रह्मा के पास एक ब्रह्माण्ड, एक युनिवर्स, एक गैलेक्सी का दायित्व होता है। तैंतालीस करोड़ बीस लाख वर्षों में एक बार ब्रह्माण्ड का प्रलय हो जाता है; फिर नया सृजन होता है। किसी-किसी की आयु मात्र कुछ क्षण की होती है। ऐसे जीव हमारी आयु की भी कल्पना नहीं कर पाते। चीण्टी क्या कल्पना कर पाएगी की कोई सौ वर्ष भी जी लेता है? ऐसे ही हमारी कल्पना के भी परे है कि ब्रह्मा जी का एक दिन हमारे तैंतालीस करोड़ बीस लाख वर्ष के बराबर है।

यहाँ किसी का भी यह सोचना स्वाभाविक है कि इस सृष्टि का प्रलय होना, फिर से बनना यह होता क्या है? यह सब जाता कहाँ है और आता कहाँ से है? इस विषय को मोबाइल से समझते हैं। मोबाइल में बहुत से फोटो, विडियो बनाते हैं, सेव करते हैं तो उसका भार न ही बढ़ता है और न ही सारे स्टोरेज को खाली करने पर उसका भार कम ही होता है। यहाँ मनुष्य यह सोचने लगे कि चलो, मिटना और फिर से बनना यह तो तय ही है तो ज्यादा सोचने की आवश्यकता ही क्या है? जो कुछ करना है कर लो, अन्त में सबकुछ समाप्त होना है और फिर से बनना है। भगवान कहते हैं हे अर्जुन ऐसा नहीं है।

9.8

प्रकृतिं(म्) स्वामवष्टभ्य, विसृजामि पुनः(फ्) पुनः।
भूतग्राममिमं(ङ्) कृत्स्नम्, अवशं(म्) प्रकृतेर्वशात्।।9.8।।

प्रकृति के वश में होने से परतन्त्र हुए इस सम्पूर्ण प्राणी समुदाय की (कल्पों के आदि में) मैं अपनी प्रकृति को वश में करके बार-बार रचना करता हूँ।

विवेचन: भगवान कहते हैं, इस प्रकृति को मैं अङ्गीकार करके, स्वभाव के बल से परतन्त्र हुए इस भक्त समुदाय को उनके ही कर्मों से रचता हूँ। ऐसा नहीं सोचना चाहिये कि पहले किये हुए कर्म नष्ट गये। ऐसा होगा तो विभिन्न योनियों का निर्माण किस आधार पर होगा? पूर्व कर्मानुसार ही श्रीभगवान नूतन सृष्टि में किसी को गधा, किसी को बिल्ली तो किसी को कुत्ता बनाते हैं। किसी के भी कर्म कहीं जाते नहीं, वे सदैव जैसे थे वैसे रहेंगे। उन्ही के आधार पर जीवों का विभिन्न योनियों में जाना तय है।

9.9

न च मां(न्) तानि कर्माणि, निबध्नन्ति धनञ्जय।
उदासीनवदासीनम्, असक्तं(न्) तेषु कर्मसु।।9.9।।

हे धनञ्जय ! उन (सृष्टि-रचना आदि) कर्मों में अनासक्त और उदासीन की तरह रहते हुए मुझे वे कर्म नहीं बाँधते।

विवेचन: भगवान कहते हैं, हे अर्जुन! कर्मों में अनासक्त और उदासीन होने के कारण, वे कर्म मुझे नहीं बाँधते। इस श्लोक के अन्तर्गत भगवान कुछ अलग कहना चाहते हैं। श्रीभगवान कह रहे हैं, हे अर्जुन! तुम भी कर्म करते हो, नई इमारत बनाते हो, नये रास्ते बनाते हो, वैभवपूर्ण महल बनाते हो। मैं भी, मीलों-मील के ब्रह्माण्ड बनाता हूँ, लेकिन हमारे बीच एक अन्तर है जिसमें तुम फँस जाते हो पर मैं नहीं फँसता। हम दोनों के लिये नियम एक जैसे हैं, पर मैं जो कर्म करता हूँ, उसमें आसक्ति नहीं होती। उन कर्मों में मेरा मन नहीं चिपकता। मैं उदासीन रहते हुए यह सारा कार्य कर्त्तव्य दृष्टि से करता हूँ।

इसे इस प्रकार समझें, जैसे संसार सूर्य के प्रकाश से चलता है। जिस स्थान पर सूर्य का प्रकाश नहीं वहाँ जीवन सम्भव नहीं; ऐसा वैज्ञानिक मानते हैं। सूर्य के प्रकाश से ही फसलें पकती हैं, उसी से हमारा जीवन चलता है परन्तु सूर्य को इससे कोई लेना-देना नहीं है, प्रकाश देना उनका कर्त्तव्य है। वे (सूर्य) यह सारा काम उदासीन रहकर करते हैं। वे अपने को कर्म से जोड़ते नहीं इसलिये कर्म के फल भी उनको बाँधते नहीं हैं। भगवान कहते हैं कि मैं सारे ब्रह्माण्ड की रचना करता हूँ पर उसके कर्म से बँधता नहीं।

9.10

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः(स्), सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय, जगद्विपरिवर्तते।।9.10।।

प्रकृति मेरी अध्यक्षता में सम्पूर्ण चराचर जगत को रचती है। हे कुन्तीनन्दन ! इसी हेतु से जगत का (विविध प्रकार से) परिवर्तन होता है।

विवेचन: श्रीभगवान कहते हैं, हे अर्जुन! सभी काम अपने आप ही हो रहे हैं, पर मैं ही उसका अध्यक्ष हूँ। मेरी प्रकृति इस सारे संसार की रचना करती है और जगत् का परिवर्तन होता है। जो कुछ हो रहा है, उसमें मेरी ही शक्ति है पर इसमे मेरा कोई सङ्कल्प नहीं। मेरी कोई आसक्ति नहीं; न ही मेंरी कोई इच्छा है। जो कुछ भी हो रहा है, मेरी शक्ति से ही हो रहा है।

9.11

अवजानन्ति मां(म्) मूढा, मानुषीं(न्) तनुमाश्रितम्।
परं(म्) भावमजानन्तो, मम भूतमहेश्वरम्।।9.11।।

मूर्ख लोग मेरे सम्पूर्ण प्राणियों के महान् ईश्वररूप श्रेष्ठ भाव को न जानते हुए मुझे मनुष्य शरीर के आश्रित मानकर अर्थात् साधारण मनुष्य मानकर (मेरी) अवज्ञा करते हैं।

विवेचन: भगवान कहते हैं, मैं सबका स्वामी हूँ परन्तु जो मूढ़ हैं वे मेरे परम भाव को नहीं जानते और न ही मानते हैं।

विगतकाल में किसी एक मूर्ख ने भगवान राम के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिह्न लगा दिया। शपथपत्र (affidevit) उच्चतम न्यायालय में प्रस्तुत किया कि "ऐसा कुछ है ही नहीं। राम एक महापुरुष हो सकते हैं। एक महापुरुष भगवान कैसे हो सकता है।" ऐसे मूर्ख और अज्ञानी लोग वैज्ञानिक तथ्यों को भी नकारते हैं। उन्हे अगर यह बताया जाये कि हीरा भी कोयले से ही बनता है तो वे इस वैज्ञानिक तथ्य को भी नहीं मानेंगे।

कोई अपने भाव से गुरु को भगवान का मान देते हैं और कोई अपने भाव से भगवान को भी मनुष्य मान लेते हैं। भगवान कभी मनुष्य के रूप में आयें तो पहचानना कठिन हो जाता है। पुराणों में बहुत-सी कथाएँ आती हैं। माता सती को भ्रम हुआ था कि क्या श्रीराम भगवान विष्णु के अवतार हैं? स्वयं ब्रह्माजी को भी भ्रम हो जाता है कि गोकुल में खेल रहा ग्वाला भगवान विष्णु का अवतार है? और परीक्षा लेने आ जाते हैं। गरुड़ जी को भी भ्रम हो जाता है। अगर भगवान के परम भाव को समझा नहीं गया तो भगवान के क्रिया कलापों को लेकर भ्रम हो जाना स्वाभाविक है।

एक उदाहरण लेते हैं, अगर किसी को जियो का सिमकार्ड चाहिए तो सीधे अम्बानी के पास नहीं जाना होता। सिम जियो के स्टोर में जाने से मिल जाता है। यह भी हो सकता है कि कभी अम्बानी स्वयं किसी स्टोर में पहुँच जाएँ क्योंकि वे जियो कम्पनी के स्वामी हैं अतः स्वतन्त्र हैं। भगवान भी अपने भक्तों के बीच उनकी इच्छाएँ पूर्ण करने आ सकते हैं।

9.12

मोघाशा मोघकर्माणो, मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं(ञ्) चैव, प्रकृतिं(म्) मोहिनीं(म्) श्रिताः।।9.12।।

(जो) आसुरी, राक्षसी और मोहिनी प्रकृति का ही आश्रय लेते हैं, ऐसे अविवेकी मनुष्यों की सब आशाएँ व्यर्थ होती हैं, सब शुभ-कर्म व्यर्थ होते हैं (और) सब ज्ञान व्यर्थ होते हैं अर्थात् जिनकी आशाएँ, कर्म और ज्ञान (समझ) सत्-फल देने वाले नहीं होते।

विवेचन: श्रीभगवान कहते हैं, हे अर्जुन! जो मेरे परम भाव को नहीं जानते, ऐसे लोग मोघाशा (व्यर्थ आशाओं में), मोघ कर्माणा (व्यर्थ कर्मों में), मोघज्ञाना (व्यर्थ ज्ञान वाले), विचेतस: (विक्षिप्त चित्त वाले), अज्ञानी जन, राक्षसी, आसुरी और मोहिनी प्रकृति को धारण किये रहते हैं।

मोघाशा अर्थात् व्यर्थ की आशाएँ। बचपन से अब तक हम व्यर्थ की आशाओं से घिरे रहते हैं। सोचते हैं कि बस यह एक काम हो जाये तो जीवन पूर्णतः सफल हो जाये। ये आशाएँ कभी समाप्त नहीं होतीं। बचपन में बच्चे एक छोटे-से खिलौने की आस लिये होता है। वह बचपन से जवान और बूढ़ा भी हो जाता है तब भी उसकी आशाएँ समाप्त नहीं होती। कितनी सारी आशाएँ पूर्ण भी हो जाती हैं लेकिन कुछ नई आशाएँ आ ही जाती हैं। जिसकी कुछ आशाएँ पूर्ण हो जाती हैं तो वह और अधिक महत्वाकाङ्क्षी हो जाता है। भगवान निराशा वाली बात अगर नहीं रखें तो मनुष्य स्वयं को ही भगवान मानने लग जाए। शायद वह यह सोचने लग जाता कि मैं जैसा सोचता हूँ, वैसा ही हो जाता है।

व्यर्थ कर्म और व्यर्थ ज्ञान को शूर्पणखा के उदाहरण से समझा जा सकता है। वह रावण को इस प्रकार सुन्दर उपदेश देती है कि लगता है स्वयं वाल्मिकी जी ही उपदेश दे रहे हैं परन्तु शूर्पणखा रावण को इसलिये उपदेश दे रही है कि वह जाकर सीता को चुराकर ले आये, यह व्यर्थ ज्ञान है।

विचेतस: अर्थात् विक्षिप्त चित्त। चित्त पर अन्धकार छा जाता है। एक निम्न मध्यम वर्गीय परिवार का उदाहरण लें। पति विलासिता पर अधिक खर्च नहीं कर सकता। पत्नी डिनर सेट लेने की जिद्द करती है। पति द्वारा मना करने पर भी मानती नहीं। अन्त में पति दीपावली के बोनस पर डिनर-सेट दिलवा देता है। घर आकर पत्नी को लगता है कि शायद दूसरा वाला लेते तो ज्यादा अच्छा रहता। क्रोधित होकर पति काँच की प्लेट नीचे पटक देता है। काँच की प्लेट चकनाचूर हो जाती है और दोनों अपना माथा पीट कर रह जाते हैं।

व्यर्थ आशाएँ, व्यर्थ ज्ञान, व्यर्थ कर्म आखिर में विक्षिप्त चित्त की ओर ले जाते हैं। इसके कारण राक्षसी, आसुरी और मोहिनी वृत्ति जीवन में जागृत होती है, इसलिये जीवन में सात्त्विकता लानी होगी।

9.13

महात्मानस्तु मां(म्) पार्थ, दैवीं(म्) प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो, ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्।।9.13।।

परन्तु हे पृथानन्दन ! दैवी प्रकृति के आश्रित अनन्य मन वाले महात्मा लोग मुझे सम्पूर्ण प्राणियों का आदि (और) अविनाशी समझकर मेरा भजन करते हैं।

विवेचन: जो दैवी प्रकृति पर आश्रित हैं, जो नित्य श्रीमद्भगवाद्गीता पढ़ते हैं, सुनते हैं; रामायण, महाभारत पढ़ते हैं, उन्हे यह ज्ञात हो जाता है कि वे परमात्मा ही परम तत्त्व हैं। जो मनुष्य चाहता है कि उसे भगवान भी मिले और संसार भी मिले, तो वह अनन्य मन से भगवान की प्रार्थना नहीं कर सकता। जो मनुष्य संसार को छोड़कर केवल भगवान को चाहता है, वह अनन्य मन की भक्ति है। यह संसार नाशवान है और परमेश्वर अविनाशी हैं। उस अविनाशी को प्राप्त करने के लिये, नाशवान को मन से हटाना ही अनन्यता है।

9.14

सततं(ङ्) कीर्तयन्तो मां(यँ), यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां(म्) भक्त्या, नित्ययुक्ता उपासते॥9.14॥

नित्य- निरन्तर (मुझ में) लगे हुए मनुष्य दृढ़व्रती होकर लगन पूर्वक साधन में लगे हुए और प्रेम पूर्वक कीर्तन करते हुए तथा मुझे नमस्कार करते हुये निरन्तर मेरी उपासना करते हैं।

विवेचन: सतत् निरन्तरता! हममें से सभी पूजा करते हैं परन्तु पूर्णतः भगवान में मन नहीं लगता। कभी पूजा अच्छे से कर ली तो कभी बस दो मिनट में पूजा समाप्त कर ली। कभी पूरे दिन भगवान का स्मरण नहीं रहता। कीर्तन की महिमा अपरम्पार है।

एक सुन्दर भजन है-

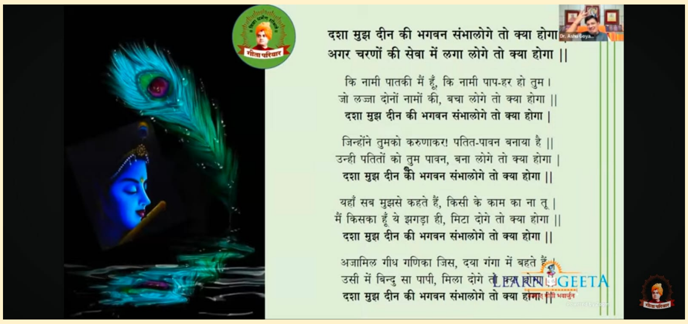

कीर्तन से भगवान प्रसन्न होते हैं। भक्त आर्त होकर जब भगवान को पुकारता है तो भगवान उसकी सुनते हैं। गाँधी बापू कहते थे, ऐसी कोई प्रार्थना नहीं जो भगवान सुनते नहीं, बस वह प्रार्थना हृदय से की जाये तो भगवान को प्राप्त हो जाती है।

9.15

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये, यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन, बहुधा विश्वतोमुखम्।।9.15।।

दूसरे साधक ज्ञान यज्ञ के द्वारा एकीभाव से (अभेद-भाव से) मेरा पूजन करते हुए मेरी उपासना करते हैं और दूसरे भी कई साधक (अपने को) पृथक् मानकर चारों तरफ मुखवाले मेरे विराट रुप की अर्थात् संसार को मेरा विराट रुप मानकर सेव्य-सेवक भाव से (मेरी) अनेक प्रकार से (उपासना करते हैं)।

विवेचन: भगवान सभी को स्वीकार करते हैं। कोई ज्ञानयोग से पूजते हैं, कोई भक्तियोग से, कोई कर्मयोग से या फिर किसी अन्य योग से।

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥ 7:19॥

ऐसा मानने वाले जो उत्तम योगी है; जो ज्ञान मार्ग से भगवान की पूजा करते हैं; जो संसार को परमात्मा का रूप मानकर सेवा के द्वारा भगवान की पूजा करते हैं, सभी भगवान को प्रिय हैं।

भगवान के लिये कहा गया है-

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

एक ही सत्य है, उसे विद्वान लोग कई तरह से कहते हैं। हम सभी को भूख लगती है। भूख एक जैसी होती है या अलग-अलग? जब भूख लगती है तो वह निर्विरोध एक जैसी ही होती है। भोजन के बाद जो तृप्ति मिलती है, वह भी एक जैसी ही होती है लेकिन भूख की मात्रा निश्चित रूप से अलग हो सकती है। कोई एक रोटी खाकर तृप्त हो सकता है, किसी को पाँच-छः रोटियाँ भी कम पड़ सकती हैं। खाने में क्या हो इसपर भी बहुत कुछ निर्भर रहता है लेकिन कुछ भी खा लो तो भूख तृप्त होगी यह तय है।

इसी तरह भगवान के मार्ग पर किसी भी रास्ते से जाओ तृप्ति एक जैसी होगी। यह बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है। यह समझ में आ गई तो मार्गों का झगड़ा ही समाप्त हो जाएगा।

9.16

अहं(ङ्) क्रतुरहं(यँ) यज्ञः(स्), स्वधाहमहमौषधम्।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यम्, अहमग्निरहं(म्) हुतम्॥9.16॥

क्रतु मैं हूँ, यज्ञ मैं हूँ, स्वधा मैं हूँ, औषध मैं हूँ, मन्त्र मैं हूँ, घृत मैं हूँ, अग्नि मैं हूँ (और) हवन रूप क्रिया भी मैं हूँ। जानने योग्य पवित्र, ओंकार, ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूँ। इस सम्पूर्ण जगत का पिता, धाता, माता, पितामह, गति, भर्ता, प्रभु, साक्षी, निवास, आश्रय, सुहृद्, उत्पत्ति, प्रलय, स्थान, निधान (भण्डार) (तथा) अविनाशी बीज (भी मैं ही हूँ)। (9.16-9.18)

विवेचन: भगवान एक अलग ही उदाहरण देकर, एक अलग प्रकार की बात कहकर, अपने गुण, प्रभाव, विभूति का वर्णन करते हैं। भगवान कहते हैं, हे अर्जुन! क्रतु मैं हूँ, यज्ञ मैं हूँ, स्वधा मैं हूँ (स्वधा - पितरों को अर्पण करने वाला अन्न), औषधी मैं हूँ (हवन में डाली जाने वाली सामग्री), मन्त्र मैं हूँ, घृत मैं हूँ, अग्नि मैं हूँ और हवनरूप क्रिया भी मैं ही हूँ।

क्रतु से तात्पर्य विधि से है। यज्ञ की दो विधियाँ हैं- एक वैदिक रीति और दूसरी स्मार्त रीति। वैदिक रीति को क्रतु कहते हैं। स्मार्त रीति से हम घरों में हवन करते हैं, लेकिन पण्डित वैदिक रीति से यज्ञ करते हैं। बात एक ही होती है, भगवान कहते हैं कि मेरे अतिरिक्त कुछ है ही नहीं।

9.17

पिताहमस्य जगतो, माता धाता पितामहः।
वेद्यं(म्) पवित्रमोङ्कार, ऋक्साम यजुरेव च।।9.17।।

विवेचन: भगवान कहते हैं, हे अर्जुन! जगत् को धारण करने वाला, पालन करने वाला पिता, माता और पितामह भी मैं ही हूँ। पितामह इसलिये कि ब्रह्मा हमारे निर्माण कर्ता हैं और ब्रह्मा का निर्माण भगवान विष्णु की नाभी से हुआ इसलिये भगवान विष्णु

हमारे पितामह हुए।

भगवान कहते हैं- जानने योग्य ओङ्कार, ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूँ। यहाँ तीन वेदों के ही नाम लिये गये हैं, वेद एक ही है उसके चार भाग हैं। भगवान ने श्रीमद्भगवद्गीता में अथर्ववेद को प्रमुखता नहीं दी है। नियत मात्रा वाली ऋचाओं को ऋग्वेद कहा गया। जो ऋचाएँ गायी जा सकती हैं उन्हे सामवेद कहा गया और जो ऋचाएँ अनियत हैं उनको यजुर्वेद कहा गया। जिन ऋचाओं में इस संसार के क्रिया-कलापों और चौंसठ कलाओं आदि का वर्णन है उसे अथर्ववेद कहा गया। गीता में भगवान इस संसार से आगे की बात करते हैं इसलिये भगवान ने गीता में अथर्ववेद की उपेक्षा की है।

9.18

गतिर्भर्ता प्रभुः(स्) साक्षी, निवासः(श्) शरणं(म्) सुहृत्।
प्रभवः(फ्) प्रलयः(स्) स्थानं(न्), निधानं(म्) बीजमव्ययम्।।9.18।।

विवेचन: भगवान कहते हैं, हे अर्जुन! बात करने योग्य, परमधाम, भरण-पोषण करने वाला, सबका स्वामी, सुहृद्, सब की उत्पत्ति, प्रलय, सब की स्थिति का आधार, निधान और अविनाशी बीज भी मैं ही हूँ। मित्र में लेन-देन का भाव होता है, सुहृद कोई अपेक्षा नहीं रखता। भगवान हमारे सुहृद हैं।

9.19

तपाम्यहमहं(वँ) वर्षं(न्), निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतं(ञ्) चैव मृत्युश्च, सदसच्चाहमर्जुन॥9.19॥

हे अर्जुन ! (संसार के हित के लिये) मैं (ही) सूर्य रूप से तपता हूँ, मैं (ही) जल को ग्रहण करता हूँ और (फिर उस जल को) (मैं ही) वर्षा रूप से बरसा देता हूँ (और तो क्या कहूँ) अमृत और मृत्यु तथा सत् और असत् (भी) मैं ही हूँ।

विवेचन: भगवान कहते हैं, हे अर्जुन! संसार के हित के लिये मैं ही सूर्य के रूप में तपता हूँ। मैं ही जल को ग्रहण करता हुआ, फिर उस जल को वर्षा के रूप में बरसाता हूँ। अमृत, मृत्यु, सत्, असत् भी मैं ही हूँ।

9.20

त्रैविद्या मां(म्) सोमपाः(फ्) पूतपापा,
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं(म्) प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकम्,
अश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्।।9.20।।

तीन वेदों में कहे हुए सकाम अनुष्ठान को करने वाले (और) सोमरस को पीने वाले (जो) पाप रहित मनुष्य यज्ञों के द्वारा (इन्द्ररूप से) मेरा पूजन करके स्वर्ग-प्राप्ति की प्रार्थना करते हैं, वे (पुण्यों के फलस्वरूप) पवित्र इन्द्रलोक को प्राप्त करके (वहाँ) स्वर्ग में देवताओं के दिव्य भोगों को भोगते हैं।

विवेचन: भगवान कहते हैं, तीनों वेदों में जो विधान दिये गये हैं, उनके द्वारा जो सकाम अनुष्ठान करते हैं, वे पुण्य प्राप्त करते हैं। इसी के प्रभाव से वे स्वर्ग को भोगते हैं।

यहाँ '**सोमपा:**' शब्द सोमरस पीने वालों को दर्शाता है। कुछ लोगों को अटपटा लगना स्वाभाविक है कि यह तो शराब पीने की बात आ गयी। भगवान तो ऐसा कह नहीं सकते। यहाँ सोमरस का अर्थ शराब नहीं है। सोमवल्ली नामक एक लता होती है जो दुर्लभ है। हमारे प्राचीन ऋषि इस लता को पारे की भस्म में मिलाकर लगाते थे। उसमे प्रतिपदा से पूर्णमासी तक पन्द्रह दिन में

एक-एक कर कुल पन्द्रह पत्ते लगते हैं, फिर पूर्णमासी से अमावस्या तक के पन्द्रह दिन में एक-एक करके सारे पत्ते गिर जाते हैं। जहाँ से पत्ते गिर जाते हैं वहाँ गाँठें निकल आती हैं। इस गाँठ का रस पीने से कई दिनों तक पोषण मिलता था और भूख-प्यास नहीं लगती थी। ऐसे ही हमारे ऋषि-मुनि कई वर्षों तक तप किया करते थे जबकि हमारे कुछ मोघज्ञानी महानुभाव शराब को सोमरस की उपमा देने लगते हैं।

9.21

ते तं(म्) भुक्त्वा स्वर्गलोकं(वँ) विशालं(ङ्),
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं(वँ) विशन्ति।
एवं(न्) त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना,
गतागतं(ङ्) कामकामा लभन्ते॥9.21॥

वे उस विशाल स्वर्गलोक के (भोगों को) भोगकर पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक में आ जाते हैं। इस प्रकार तीनों वेदों में कहे हुए सकाम धर्म का आश्रय लिये हुए भोगों की कामना करने वाले मनुष्य आवागमन को प्राप्त होते हैं।

विवेचन: भगवान कहते हैं, वे इस विशाल स्वर्गलोक को भोगकर पुण्य क्षीण होने पर पुन: इस लोक में आते हैं। इस प्रकार बार-बार वे इस संसार में आते हैं-

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं।
पुनरपि जननी जठरे शयनम्।।

जब हम किसी पाँच सितारा होटल में जाते हैं। उस होटल में प्रतिदिन के किराये और हमारे क्रेडिट कार्ड के बैलेन्स के अनुसार कुछ दिन बढ़िया से बढ़िया सेवा उपलब्ध होती है। घण्टी बजाते ही हर काम को; हर सुविधा को वे लोग हम तक पूर्ण तत्परता से पहुँचाते हैं। जैसे ही क्रेडिट कार्ड का बैलेन्स समाप्त होता है, हमें होटल का कमरा खाली करना ही पड़ता है। ऐसे ही पुण्यवानों को उनका पुण्य रूपी धन समाप्त होते ही, स्वर्ग से सीधे मृत्यु लोक में भेज दिया जाता है। यहाँ तात्पर्य इतना ही है कि सत्कार्य का लाभ तब तक ही रहेगा जितना हमने जोड़ रखा है। यह चक्र ऐसे ही चलता रहेगा।

हरिशरणं! हरिशरणं!! हरिशरणं!!!

प्रश्नोत्तर

प्रश्नकर्ता- हनुमान प्रसाद जी
प्रश्न- आठवें श्लोक के 'विसृजामि' का अर्थ क्या है?
उत्तर- पुन: सृजन करना।

प्रश्न- 'मोघाशा' का अर्थ क्या है?
उत्तर- व्यर्थ की आशा।

प्रश्न- ब्रह्मा और परब्रह्म में क्या अन्तर है?
उत्तर- ब्रह्मा देवता हैं, परब्रह्म मूल ईश्वर हैं।

प्रश्नकर्ता- दामानी जी
प्रश्न- इस जन्म के कर्म अगले जन्म में भोगने हैं तो जन्म-मरण कभी समाप्त नहीं होगा?
उत्तर- कर्म फल को ज्ञान से नष्ट कर सकते हैं। भक्ति के प्रभाव से भक्तों के कर्मों के प्रभाव को भगवान स्वयं नष्ट कर देते हैं।
'**ज्ञानाग्निदग्ध कर्माणा।**'

प्रश्नकर्ता- पद्मिनी जी
प्रश्न- किसी व्यक्ति के अन्तिम समय में श्रीमद्भगवद्गीता का कौन-सा अध्याय सुनाएँ?
उत्तर- कोई-सा भी अध्याय सुना सकते हैं।

प्रश्नकर्ता- रघुपति जी
प्रश्न- उन्नीसवें श्लोक में कुछ आशङ्का है। कुछ विरोधाभास लगता है।
उत्तर- कुछ विरोधाभास हैं, जब भगवान कहते हैं कि मैं जीवन भी हूँ और मृत्यु भी हूँ। भगवान इन सभी क्रियाओं का स्वयं को मूल कारण बता रहे हैं।

प्रश्नकर्ता- किरण गोयल जी
प्रश्न- सत्कर्म करने पर हम स्वर्ग लोक में जाते हैं लेकिन जब पुण्य समाप्त हो जाते हैं तो हम पुन: इस लोक में आ जाते हैं। ये चक्र कब छूटेगा?
उत्तर- सकामता जब समाप्त हो जाएगी तो कर्म का बन्धन नहीं होगा। निष्कामता आने पर कर्म का बन्धन नहीं रहेगा। यह कर्मयोग है। हमारे जो कार्य हैं, वे सभी भगवान को प्रसन्न करने के लिये हैं। यह भक्तिमार्ग है। मैं कुछ नहीं करता, जो मेरे द्वारा हो रहा है वह इन्द्रियों द्वारा हो रहा है। गुण ही गुणों में बरत रहे हैं, यह ज्ञान मार्ग है।

प्रश्नकर्ता- इन्दु जी
प्रश्न- बच्चे को सन्मार्ग पर कैसे लगाएँ?
उत्तर- वयस्क बच्चों को प्रेरित किया जा सकता है, समझाना मुश्किल है। समझाने की आयु तेरह-चौदह वर्ष है। वयस्क बालकों के हम स्वामी नहीं उनके पालक हैं; ऐसा मानकर उनके लिये प्रार्थना करना, उनपर क्रोध नहीं करना चाहिये। भगवान उनको सन्मार्ग पर लगाएँगें। हमें अपने जीवन को उनके लिये आदर्श बनाना चाहिये।

प्रश्नकर्ता- देवेन्द्र जी
प्रश्न- चौथे और पाँचवें श्लोक में विरोधाभास है। कृपया विस्तार करें?
उत्तर- दोपहर को सूर्य की रोशनी से हमारी परछाई बनती है। क्या सूर्य की रोशनी में परछाई है? क्या परछाई में सूर्य की रोशनी है, नहीं परन्तु सूर्य की रोशनी परछाई का कारण है। वैसे ही परमात्मा के सङ्कल्प से जड़ सृष्टि का निर्माण होता है परन्तु इस जड़ सृष्टि में परमात्मा नहीं है और परमात्मा में यह जड़ सृष्टि नहीं है। अगर जड़ सृष्टि में परमात्मा होंगे तो यह सृष्टि चेतन हो जाएगी और अविनाशी हो जाएगी लेकिन यह प्रकृति तो बनती और नष्ट हो जाती है, अत: सिद्ध होता है कि इस जड़ सृष्टि में परमात्मा नहीं है।

प्रश्न- ज्ञान के द्वारा या कर्मयोग या भक्ति के द्वारा हमारा चित्त शुद्ध हो जाता है तो क्या इनमें से किसी भी मार्ग से अपने आप ही हमें मोक्ष मिल जाता है?
उत्तर- भक्ति या कर्मयोग से परमात्मा नहीं मिलते। इनसे केवल चित्त शुद्ध होता है। परमात्मा तो पहले से ही हमें मिले हुए हैं। इन क्रियाओं से जैसे ही कामनाओं की, विकारों की परत हटती है तो परमात्मा प्रकट हो जाते हैं।

प्रश्नकर्ता- बजरङ्ग जी
प्रश्न- तीव्र बुद्धिवाले बच्चे युवावस्था में मतिभ्रष्ट हो जाते हैं?
उत्तर- ऐसा किसी शारीरिक चोट आदि के द्वारा हो सकता है या पूर्व जन्मों के प्रभाव से हो सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ और नाम-जप ऐसी स्थिति में सहायक हो सकते हैं।

प्रश्नकर्ता- सन्ध्या जी
प्रश्न- अच्छे भाव से कर्म करें परन्तु परिणाम ठीक नहीं आते हैं तो कब तक सहन करें?
उत्तर- कर्म पर ही हमारा अधिकार है, परिणाम पर हमारा अधिकार नहीं है। **"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषुकदाचन"।** किसान कितने परिश्रम से खेती करता है परन्तु फसल अच्छी ही आएगी इसकी कोई गारण्टी नहीं दे सकता। ये बाते हमारे अधिकार में हैं ही नहीं। इसका कारण यह हो सकता है कि जैसे हमने सौ रुपये का काम किया, लेकिन हम पर

यदि दो सौ का पहले से कर्ज है तो फल शून्य मिलेगा। किसी के सौ रुपये पहले के बाकी हैं तो उसको कुल दो सौ रुपये मिलेंगे। इस प्रकार प्रारब्ध भी परिणाम में प्रभावकारी होता है।

प्रश्न- लड्डू गोपाल को लङ्गड़ा गोपाल भी कहते हैं। ऐसा क्यों?
उत्तर- वे बालकृष्ण हैं। वात्सल्य भाव से उनकी पूजा करनी चाहिये।

प्रश्नकर्ता- राधा जी
प्रश्न- पहले किसी के प्रश्न के उत्तर में आपने कहा था कि ग्रहस्थ को **पञ्चदेव** की पूजा करनी चाहिये। ऐसा क्यों? एक की पूजा क्यों नहीं कर सकते?
उत्तर- हर कार्य की एक व्यवस्था है। जो विभाग जिसके पास होता है वही उस विभाग को देखता है। हर देवता को कुछ विशेष कार्य दिये गये हैं। कार्य की दृष्टि से देवताओं की आराधाना करनी चाहिये। यथायोग्य देवताओं की उपासना करना हमारा कर्त्तव्य है। सब देवताओं का अलग-अलग क्षेत्र हैं। उन देवताओं की कृपा से हमारा जीवन चल रहा है। भगवान ने तीसरे अध्याय में कहा है कि देवताओं को उनका भाग दिये बिना यदि हम कुछ ग्रहण करते हैं तो हम चोर हैं-

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभावित:।
तैर्दत्तानप्रदायेभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव स:।।

प्रश्नकर्ता- प्रकाश जी
प्रश्न- श्रीमद्भगवद्गीता संस्कृत में हैं। ज्ञानेश्वर महाराज ने बहुत छोटी आयु में श्रीमद्भगवाद्गीता को संस्कृत से मराठी में कैसे अनुवाद किया?
उत्तर- ज्ञानेश्वर महाराज कोई साधारण मनुष्य नहीं थे। वे अवतारी थे। उनकी क्षमता को हम अपनी बुद्धि से आङ्क नहीं सकते।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||